भारत में ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध और अनिवार्य दवाएँ न मिल पाने की चुनौतियों में संतुलन लाना
Balancing the Challenges of Antibiotic Resistance and Lack of Access to Essential Medicines in India

ऐलिस ईस्टन
Alice Easton
November 7, 2011

जहाँ तक ऐंटीबायोटिक दवाओं का संबंध है, भारत में इस संदर्भ में दो बिल्कुल अंतर्विरोधी समस्याएँ हैं: बहुत से लोग इसलिए मरते हैं क्योंकि उन्हें ऐंटीबायोटिक दवाएँ नहीं मिल पातीं और दूसरे लोग ऐसे हालात में भी इनका प्रयोग करते हैं जब इनकी उन्हें ज़रूरत नहीं होती और इस प्रकार वे ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध को बढ़ाने में मदद करते हैं.ऐंटीबायोटिक प्रतिरोधक कीटाणु एक या उससे अधिक ऐंटीबायोटिक के इलाज को तो झेल सकता है और ऐंटीबायोटिक के प्रयोग के कारण ये कीटाणुओं के उपभेद उन कीटाणुओं को चुन-चुनकर मार डालते हैं,जो प्रतिरोधक नहीं होते. ऐंटीबायटिक प्रतिरोध दुनिया भर में एक बहुत बड़ी समस्या है जबकि ऐंटीबायटिक न मिल पाने की समस्या विकासशील देशों तक ही सीमित है.

विकसित देशों में अल्पकालिक रूप में ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध का प्रभाव इस तथ्य से और कम हो जाता है कि कई रोगी ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध के कारण पहली पंक्ति का इलाज विफल होने पर नये और अधिक महँगे ऐंटीबायोटिक्स खरीदने का खर्च उठा सकते हैं. भारत में नई दवाएँ गरीब रोगियों की पहुँच से बाहर हैं. निमोनिया के कारण आज भी भारत में सबसे अधिक बच्चों की मौतें होती हैं. इससे यह पता चलता है कि भारत में अधिकांश बच्चों की पहुँच उन दवाओं तक नहीं है जिनके कारण विकसित देशों में निमोनिया से मरने वालों की संख्या में कमी आई है.

दूसरा कारण यह है कि कई बच्चे निवारण की जा सकने योग्य संक्रामक बीमारियों के कारण मरते हैं और भारत के केवल 40 प्रतिशत भारतीय बच्चों को ही वे सभी टीके मिल पाते हैं,जो सार्वभौमिक टीकाकरण
कार्यक्रम (UIP) के अंतर्गत गारंटीकृत हैं.सार्वभौमिक टीकाकरण कार्यक्रम (UIP) में शामिल न होने वाले टीकों तक पहुँच और भी कम है.
यदि निमोनिया जैसी बीमारियों के टीके और अधिक बच्चों को लगाए जाते हैं तो निमोनिया के इलाज के लिए आवश्यक ऐंटीबायोटिक की माँग और घट जाएगी. ऐंटीबायोटिक के कम प्रयोग के कारण ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध भी कम होगा. सरकारी एजेंसियों के समर्थन और GAVI एलायंस के वित्तीय सहयोग के बावजूद 'हिब' (निमोनिया का एक कारण) की रोकथाम के लिए UIP में

टीके को शामिल करने के लिए किए जा रहे प्रयासों को भारत में डेटा की कमी के कारण जबर्दस्त विरोध को देखते हुए रोक दिया गया है.

इन परिस्थितियों के विपरीत जहाँ ऐंटीबायोटिक्स की पहुँच नहीं है और देश के जिन भागों में (ज़्यादातर शहरी इलाकों में) ऐंटीबायोटिक्स आसानी से सुलभ है, उनका अनावश्यक प्रयोग एक ऐसा वातावरण तैयार करता है जो प्रतिरोध को बढ़ावा देता है. IMS स्वास्थ्य संबंधी सूचना के अनुसार भारत के खुदरा क्षेत्र में ऐंटीबायोटिक की खरीद में 2005 और 2009 के बीच लगभग 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है. कुछ फ़ार्मेसियों के मालिकों में उद्यमशीलता की भावना के साथ-साथ केवल नुस्खे वाले कानून को लागू न किए जाने का अर्थ है कि इसके प्रयोग पर मोटे तौर पर कोई रोक-टोक नहीं है.

लेकिन कुछ उद्यमशील फ़ार्मसिस्टों पर दोषारोपण करना जल्दबाजी होगी,जबकि अस्पताल और क्लिनिक भी इस समस्या के लिए उतने ही दोषी हैं. कई अस्पतालों में संक्रमण नियंत्रण की कार्यविधि कमज़ोर होने के कारण ही अस्पताल में भर्ती रोगियों में प्रतिरोधी संक्रमण फैलने में मदद मिलती है. डॉक्टर ऐंटीबायोटिक्स को नुस्खे में इसलिए लिखते हैं क्योंकि उनके पास अपने रोगियों में बुखार के सही कारण को जानने के लिए अपेक्षित नैदानिक परीक्षण की सुविधा नहीं होती. वे यह सोचकर नुस्खे पर अधिक दवा लिख देते हैं क्योंकि उनके रोगी डॉक्टर की फ़ीस चुकाने के बाद भी तब तक वहाँ से नहीं हिलते,जब तक कि डॉक्टर कोई न कोई ऐंटीबायोटिक दवा उनके नुस्खे पर नहीं लिख देता. यह तर्क ग्रामीण क्षेत्रों में विश्वसनीय नहीं लगता, जहाँ लोग यह भी नहीं जानते कि ऐंटीबायोटिक्स किस बला का नाम है.
ऐंटीबायोटिक्स के चौतरफ़े अत्यधिक प्रयोग का अर्थ है कि जहाँ भी ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध का परीक्षण किया जाता है वहाँ आम तौर पर इसकी मात्रा चिंताजनक रूप में अधिक पाई गई है.कई अस्पताल प्रतिरोध के आँकड़े प्रकाशित तो करते हैं लेकिन वे न तो विश्वसनीय होते हैं, न देशव्यापी और न ही समय-श्रेणीबद्ध डेटा होते हैं. अस्पतालों के बाहर के प्रतिरोध के आँकड़े तो और भी कम होते हैं.अस्पतालों में चिंताजनक परिणामों का जो परीक्षण किया भी जाता है, उसका मीडिया कवरेज भी दिशाहीन होता है; इसके लिए दूसरे अस्पतालों में निगरानी की कमी को स्वीकार करने के बजाय सारा दोष आसानी से वैज्ञानिक सुविधाओं पर मढ़ दिया जाता है.

यद्यपि भारत में सूक्ष्मजीवविज्ञान के संबंध में प्रकाशित अधिकांश डेटा की मीडिया द्वारा उपेक्षा कर दी जाती है,लेकिन इस मामले में नई दिल्ली का मैटलो-*बीटा*-लैक्मेज़-1 (NDM-1) अपने-आपमें एक बड़ा अपवाद है. NDM-1 एक ऐसा जीन है, जो अनेक ऐंटीबायोटिक्स के प्रति प्रतिरोध करता है और जिसे कीटाणुओं की भिन्न-भिन्न प्रजातियों के बीच अंतरित किया जा सकता है. इसकी जानकारी सर्वप्रथम सन् 2009 में एक स्वीडिश रोगी में मिली थी जिसकी शल्यक्रिया नई

दिल्ली में की गई थी. परवर्ती अध्ययन ने भारतीय अस्पतालों में और नई दिल्ली के पीने के पानी में और पानी के रिसाव में इस प्रतिरोधी जीन को अलग कर दिया है. यह स्थापना करते हुए कि भारत में जन्म लेने वाला NDM-1 बहुत मुश्किल होगा, *लैन्सेट* में यह सुझाव दिया गया है कि भारत में मेडिकल पर्यटन के बारे में सोचने वाले यू.के.के नागरिकों को दो बार सोचना चाहिए. इससे भारत में तहलका मच गया.

भारत में ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध की समस्या बहुत साल पुरानी है और NDM-1 पर मीडिया का ध्यान हटने के बाद भी यह समस्या बनी रहेगी. केवल दोषारोपण करना ही इसके अनुसंधान का मुख्य लक्ष्य नहीं होना चाहिए. बल्कि ऐसे अध्ययन का लक्ष्य यह समझना होना चाहिए कि यह कैसे विकसित होता है और कैसे फैलता है. इस प्रकार के अध्ययन से और भारत में चिकित्सा संबंधी देखभाल असुरक्षित है, ऐसा अर्थ निकाले जाने से इतनी जागरूकता तो आ ही गई है कि भारत में ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध एक समस्या है. इसी गंभीर स्थिति के चलते स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय में एक ऐंटीबायोटिक कार्य दल का गठन किया गया है.

इस कार्य दल की एक विवादास्पद सिफ़ारिश यह भी थी कि सरकार को पंजीकृत चिकित्सक के नुस्खे के बिना ऐंटीबायोटिक्स की खरीद पर सख्ती से रोक लगा देनी चाहिए. बिना नुस्खे के ऐंटीबायोटिक्स बेचना तो पहले से ही गैर-कानूनी है, लेकिन इसका पालन कभी-कभार ही किया जाता है. इसके अलावा, तृतीयक अस्पतालों में ऐंटीबायोटिक्स का प्रयोग अंतिम विकल्प के रूप में ही आरक्षित होगा. फ़ार्मसिस्ट संगठनों को चिंता है कि इस प्रकार के विनिमयों से उनके लाभ में कमी आ सकती है और उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अलग-अलग स्थानों पर बसे लोगों को जीवनरक्षक दवा मिलने में कठिनाई भी हो सकती है.

नई दिल्ली में आयोजित कीटाणु संक्रमण के वैश्विक मंच को संबोधित करते हुए भारत के स्वास्थ्य मंत्री आदरणीय डॉ. गुलाम नबी आज़ाद ने स्पष्ट किया कि कार्यबल के प्रस्ताव तब तक लागू नहीं किए जाएँगे जब तक कि सरकार यह सुनिश्चित नहीं कर लेती कि ऐंटीबायोटिक की बिक्री के विनियमन के उपाय नहीं निकाल लिए गए हैं और इससे जनता का कोई भी वर्ग जीवनरक्षक दवाओं से वंचित नहीं रह गया है. कई ग्रामीण इलाकों में तो पंजीकृत चिकित्सक हैं ही नहीं. ऐसी स्थिति में वहाँ के निवासियों के लिए कानूनी नुस्खा प्राप्त करना भी असंभव हो जाएगा. इन नियमों को देश-भर में लागू करने से पहले सरकार को यह विचार करना होगा कि जिन स्थानों पर पंजीकृत चिकित्सक नहीं हैं, वहाँ इनकी उपलब्धता कैसे सुनिश्चित की जा सकेगी.

भारत में ऐंटीबायोटिक के अत्यधिक उपयोग को लक्षित करने के लिए हमारे हस्तक्षेप हैं, अनिवार्य अंतःसेवाकालीन प्रशिक्षण के माध्यम से फ़ार्मसिस्टों और डॉक्टरों में जागरूकता पैदा करना, खेतिहर जानवरों में ऐंटीबायोटिक के वर्तमान अनियमित प्रयोग को नियंत्रित करना और प्रतिरोध के स्तर को मापने के लिए और यह निर्धारित करने के लिए कि कहीं हस्तक्षेपों का ऐंटीबायोटिक के प्रयोग और प्रतिरोध पर कोई प्रभाव तो नहीं पड़ रहा है, निगरानी प्रणाली स्थापित करना. स्वच्छता की सुविधा को अधिकाधिक बढ़ाने जैसे हस्तक्षेपों से कीटाणुगत रोगों में तो कमी आएगी ही, ऐंटीबायोटिक के प्रयोग की ज़रूरतों में कमी आने से प्रतिरोध फैलना भी कम हो जाएगा.

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध से जूझना एक जटिल समस्या है. हमें इस तथ्य के महत्व को समझना होगा कि जहाँ कुछ अस्पतालों और फ़ार्मेसियों में ऐंटीबायोटिक्स का अंधाधुंध वितरण किया जाता है, वहाँ दूसरी ओर अन्य लोग इसलिए मर जाते हैं,क्योंकि उन्हें ज़रूरत पड़ने पर ऐंटीबायोटिक्स की सुविधा मिल नहीं पाई. ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध न तो नया है और न ही भारत तक सीमित है, लेकिन NDM-1 विवाद के उठने पर इस पर जो लगातार ध्यान दिया जाने लगा है उससे व्यापक ऐंटीबायोटिक नीति को लागू किए जाने की उम्मीद तो बँधती ही है.

ऐलिस ईस्टन शिकागो के बोस्टन परामर्श दल में एक एसोसिएट हैं. जुलाई 2009 से अक्तूबर 2011 तक वह भारत में वैश्विक ऐंटीबायोटिक प्रतिरोध भागीदारी में समन्वय का कार्य करती रही हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>